गोष्ठी संचालकों के लिए उपयोगी बिन्दु

गोष्ठी में उपस्थित होने वाले सदस्यों के साथ निम्नांकित बिन्दुओं पर चर्चा करके शास्त्रोक्त विचारधारा के प्रति उनकी निष्ठा सुदृढ़ करने की चेष्टा अवश्य करें -

१. दैनिक जीवन में यह स्वाभाविक ही स्मरण रहता है कि मैं अमुक संस्थान का सदस्य हूँ, उन्हीं के कार्यालय में काम करता हूँ, उनकी दी गई सामग्री का उपयोग उनकी आज्ञानुसार तथा उन्हीं की सेवा के लिये करता हूँ। इसी प्रकार प्रत्येक सदस्य यह अवश्य देखे कि दिन भर में कितनी बार तथा कितनी देर के लिये यह स्मृति रहती है कि 'मैं भगवान् का ही हूँ, उन्हीं के घर/कार्यालय में हूँ, उन्हीं का काम करता हूँ, उन्हीं का दिया हुआ प्रसाद पाता हूँ तथा उन्हीं के जनों की सेवा करता हूँ'। निजी स्वार्थ के लिये कुछ भी करना उसी प्रकार अनुचित है, जिस प्रकार कार्यालय में काम करते समय अपना कोई निजी काम करना।

२. यदि मनुष्य चाहता है कि दिन भर के कार्यों में उसे भगवान् की शक्ति प्राप्त होती रहे, तो फिर उसे दिन भर भगवान् से जुड़े रहने की पूरी चेष्टा करनी चाहिये। इसका सरल उपाय है सतत् नाम-जप करते हुए अपने सारे कर्तव्यों का निर्वाह करना (गीता - ८/७)।

उदाहरणार्थ, घर अथवा कार्यालय को सर्वप्रथम बिजली के स्रोत से जोड़ दिया जाता है। फिर उस विद्युत-शक्ति से अनेक उपकरणों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्य करना सम्भव हो जाता है। इसी प्रकार, दिन भर के कार्यों को आरम्भ करने से पहले ही मनुष्य को भगवान् से जुड़ जाना चाहिये। इसके लिये प्रातःकाल ही कुछ देर एकान्त में बैठकर तथा सब व्यक्तियों और परिस्थितियों के विचार छोड़कर एकाग्रता से भगवच्चिन्तन सहित नाम-जप करना चाहिये। इस अवधि में भगवान् व गुरु से प्रार्थना करनी चाहिये कि वे ही कृपा कर के दिन भर नाम-जप के माध्यम से उनके साथ सम्पर्क सुदृढ़ बनाए रखें। साथ ही, इस प्रार्थना को क्रियान्वित करने के लिये उसी समय अपने लिये कुछ युक्तियाँ भी दृढ़ता के साथ सुनिश्चित करनी चाहिये। इसके अन्तर्गत साँस-साँस में नाम-जप के साथ दिन भर हर १-२ घण्टे बाद कार्य के मध्य में १-२ मालाएँ करने का संकलप लेना चाहिये।

इस प्रकार नाम-जप की शक्ति के आधार पर ही सारे कर्तव्य-कर्मों का निर्वाह करना श्रेयस्कर है। यदि जप चलता रहे पर मन इधर-उधर भागे, तब भी भगवान् का नाम उस विद्युत-शक्ति की भाँति अपना काम तो करता ही रहेगा। परन्तु यदि बिजली के स्रोत से सम्पर्क बना ही न रहे, तो अथक परिश्रम तथा उत्तम से उत्तम उपकरणों के होने पर भी अन्त में अव्यवस्था और असफलता ही हाथ लगते हैं (गीता - १८/५८)।

३. विद्यार्थी इसी उद्देश्य से वर्षभर परिश्रम करता है कि वार्षिक परीक्षा के लिये उसकी पूरी तैयारी हो। विद्यार्थी जीवन के अन्य अंगों (खेलकूद, संगीत, कला, पौष्टिक भोजन आदि) का सन्तुलित सदुपयोग इसी उद्देश्य के अन्तर्गत ही किया जाता है। इसी प्रकार, भगवान् की असीम कृपा से जिन जीवों को मनुष्य योनि में प्रवेश मिला है, उन्हें अपने जीवन की अन्तिम परीक्षा (अर्थात् मृत्यु के बिन्दु) पर दृष्टि केन्द्रित करनी

चाहिये। फिर उसी परीक्षा की तैयारी के लिये तथा जन्म-मृत्यु के भयानक चक्र से छूटने के लिये ही अपने जीवन के सभी कर्म निर्धारित करने चाहिये। सामान्य गृहस्थ-जीवन व्यतीत करते हुए इस परीक्षा में सफल होने के लिये गृहस्थ-धर्म का अध्ययन तथा अपने वर्णाश्रम अनुसार दैनिक जीवन में उसका क्रियान्वयन परमावश्यक है।

४. दैनिक जीवन में जिन कठिन परिस्थितियों को प्रतिकूल समझा जाता है, वे वास्तव में भगवान् के द्वारा भेजे गये अवसर हैं। इन चुनैतियों का सदुपयोग करके मनुष्य अपनी योग्यता बढ़ाकर भगवान् की ओर एक कदम आगे बढ़ सकता है। इनको अपने लिये प्रतिकूल समझना वैसे ही है जैसे किसी विद्यार्थी की यह शिकायत हो कि 'मैंने इतने परिश्रम और सत्यता से पढ़ाई की, फिर भी मुझे परीक्षा का सामना क्यों करना पड़ रहा है?' यह सभी का अनुभव है कि जिस विद्यार्थी ने अपने पाठ्यक्रम का अध्ययन न किया हो, वही भयभीत होकर यह चाहता है कि परीक्षा किसी प्रकार टल जाये। इसके विपरीत, जिस विद्यार्थी ने व्यवसायात्मिका बुद्धि का सदुपयोग करके पूर्ण तैयारी की है, उसमें बाघ जैसी शक्ति और साहस का संचार होता है। ऐसा विद्यार्थी अत्यन्त उत्सुकता से परीक्षा की प्रतीक्षा करता है, जिससे वह अपनी पढ़ाई का क्रियात्मक अभ्यास करके अपना उत्थान कर सके।

५. इस दृष्टिकोण और तैयारी से युक्त होने के लिये मनुष्य के लिये परमावश्यक है कि वह नियमित स्वाध्याय और सत्संग करे तथा उन सिद्धान्तों पर भली प्रकार मनन करे। साथ ही, शास्त्र-विरोधी सामाजिक मान्यताओं और कुसंग का त्याग निश्चयपूर्वक करे। यदि नाम-जप, स्वाध्याय, हवन आदि साधनों का अभ्यास तो तत्परता से किया जाये, परन्तु मन में उपरोक्त पारिवारिक अथवा सामाजिक मान्यताओं को पकड़े रहने का हठ रहे, तो यह चेष्टा निरर्थक ही है। यह वैसे ही हास्यास्पद है जैसे कोई व्यक्ति स्नानघर में अपने ऊपर जल डालने की क्रिया में तो तत्पर हो, परन्तु पहले से पहने हुए रेनकोट को उतारने के लिये तैयार न हो।

६. पारिवारिक व सामाजिक मान्यताओं के कुछ सामान्य उदाहरण निम्नांकित हैं। इन पर विचार कर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि दैनिक जीवन में इनका प्रवेश कितनी मात्रा में हो चुका है। इनसे मुक्त होने के लिये प्रस्तुत शास्त्रोक्त समाधानों पर भली प्रकार मनन करना चाहिये -

(क) मान्यता :- मनुष्य को अपने अधिकारों को पाने के लिये जूझते रहना चाहिये।

समाधानः- गीता - २/४७ में भगवान् ने स्पष्ट किया है कि मनुष्य का अधिकार केवल यह है कि वह शास्त्रोक्त कर्म अर्थात् अपना स्वधर्म-पालन करे और अपने लिये किसी भी प्रकार के फल को न चाहे। साथ ही, भगवान् पर निर्भर होने का बहाना बनाकर कर्म से विरत भी न हो।

(ख) मान्यता :- नारी का समान अधिकार है कि वह जीविकोपार्जन हेतु नौकरी करके परिवार के लालन-पालन में अपना योगदान दे।

समाधानः- गीता - २/४५ में भगवान् ने 'निर्योगक्षेम' होने की स्पष्ट आज्ञा दी है। अतः ***धन कमाने की दृष्टि से*** *कुछ भी करना न तो पुरुष के लिये कल्याणकारी है, न नारी के लिये। अपने-अपने कर्तव्य के क्षेत्र में योगदान केवल इस दृष्टि से देना चाहिये कि यज्ञ का आचरण हो तथा लोकसंग्रह का कार्य सम्पन्न हो। इससे देवता पुष्ट होकर इच्छित भोग स्वयं ही प्रदान करते हैं (गीता - ३/६, १२ व २०)। पुरुष के कर्तव्य का क्षेत्र यह है कि वह कार्यालय आदि में कर्मयोग का सक्रिय अभ्यास करे। नारी के कर्तव्य का क्षेत्र यही है कि वह गृहकार्य एवं बच्चों का लालन-पालन करते हुए अपने घर-परिवार में धर्म की स्थापना करे, जिससे परिवार के सभी सदस्यों को भगवद्प्राप्ति होने का मार्ग सुलभ हो जाये।*

(ग) मान्यता :- सामाजिक जीवन में महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों तथा पीरवीरक सम्बन्धियों के साथ मेल-जोल बनाये रखना चाहिये। इससे आवश्यकता पड़ने पर उनसे सहायता भी ली जा सकती है।

समाधानः- परिवार अथवा समाज के जिस व्यक्ति को भगवान् तथा धर्मनिष्ठ जीवनशैली पर विश्वास न हो, उससे सुख-प्राप्ति अथवा स्वार्थ-सिद्धि की दृष्टि से संग करना कुसंग का ही घातक रूप है। ऐसे सदस्यों का संग केवल अपने स्वधर्म-पालन तक ही सीमित रखना चाहिये। अपनी ओर से उन्हीं व्यक्तियों के साथ चेष्टा पूर्वक संग करना चाहिये जिनसे नियमित स्वाध्याय, सत्संग, भजन तथा आत्मशोधन की प्रेरणा मिलती रहे (गीता - १०/६)।

७. प्रायः यही देखा जाता है कि प्रतिकूलता के समय मनुष्य निरहंकारी होकर व अपनी मान्यताओं को त्यागकर शास्त्र की शरण ग्रहण करता है। फिर अनुकूलता प्राप्त करने पर वह पुनः अहंकार, आसक्ति व मान्यताओं का शिकार बन जाता है। ऐसे में, क्रियात्मक साधन करने पर भी मन अशान्त ही रहता है। इसलिये गोष्ठी संचालकों को स्वयं भी सावधान होना चाहिये तथा गोष्ठी के सदस्यों को भी सावधान करना चाहिये कि यदि किसी भी कारण मन अशान्त है, तो कहीं न कहीं भगवान् से विमुखता हो रही है।

इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि भगवान् से जुड़े रहने के लिये मशीन की तरह निरन्तर नाम-जप होता रहे, जब तक मन पूर्णतया शान्त न हो जाए। साथ ही, सत्संग व स्वाध्याय द्वारा पूरी सत्यता से मार्गदर्शन लेकर यह समझने की चेष्टा करनी चाहिये कि उन सिद्धान्तों में और अपने विचारों में विषमता कहाँ है जिसके कारण भगवान् से विमुखता हो रही है।

८. गोष्ठी में सदस्यों की संख्या को महत्त्व न देकर केवल यह चेष्टा करें कि जो भी सम्मिलित हों, उनमें भगवान् पर विश्वास दृढ़ हो तथा मान्यताओं को त्यागकर शास्त्रोक्त जीवनशैली को अपनाने के लिये कटिबद्ध हों। सदस्यों को सावधान करें कि कलियुग में समाज के अन्य सदस्यों से वे इस जीवनशैली के समर्थन की आशा न करें। इसके स्थान पर पारिवारिक गोष्ठी व सत्संग के माध्यम से भक्त-समाज व भगवान् से वे अपना सम्बन्ध सुदृढ़ करें। गोष्ठी संचालक भी अपनी ओर से केवल भगवान् का यंत्र होने की चेष्टा करें और संचालन का भार उन्हीं के चरणों में सौंप दें।